राजनीति में मध्यांतर (दो)

तुकाराम: जनसाधारण के धर्म का गायक

प्रेम सिंह

"वारकरी संतों में ज्ञानेश्वर, नामदेव और एकनाथ के पश्चात कालक्रम से तुकाराम की प्रतिष्ठा है। पर तुकाराम ने अपने अभंगों की अजस्र धारा से कालक्रम की रेखाओं को बहा दिया है। आज के महाराष्ट्र के प्रत्येक गृह में अपने तीखे, परमार्थ और व्यवहारपरक अभंगों से मूर्धन्य बने हुए हैं। डॉ. तुलपुले ने एकनाथ को 'लोकोन्मुख कवि' कहा है। पर हम तुकाराम की लोकाभिमुखता को एकनाथ से भी अधिक व्यापक मानते हैं। एकनाथ में ब्राहम्णत्व की तेजस्विता और प्रखरता है; तुकाराम में सामान्य जन की नम्रता और शालीनता है। एकनाथ में संस्कृत का पांडित्य है। तुकाराम में प्राकृत-मराठी का भोलापन है। जनता के हदय में अपनी सहज उक्तियों से जो स्थान तुकाराम ने प्राप्त किया है, वह कदाचित ही किसी महाराष्ट्र संत को प्राप्त हुआ हो। जनाबाई ने उन्हें वारकरी-मन-मंदिर का 'कलश' कहा है।" - आचार्य विनय मोहन शर्मा

महारा∀ट्र के संत और कवि तुकाराम (1608-1650) की साधना विलक्षण कोटि की है। उन्होंने महज 42 साल की उम्र पाई थी। अपनी आयु के 20-22 साल वे सामान्य गृहस्थ का जीवन जीते रहे। शेष आयु में उन्होंने वह सब किया, जिसके चलते वे अक्षय कीर्ति के भागी बने हुए हैं। हालांकि साधना के दौर में भी उन्होंने गृहस्थ जीवन का त्याग नहीं किया था। 'स्वर्गारोहण' से पहले वे अपनी पत्नी को साथ चलने के लिए बुलाना नहीं भूले थे; जो उन दिनों गर्भवती थी। तुकाराम की साधना की विलक्षणता इस अर्थ में है कि उनका संतपन, कवित्व और धर्म अभिन्न हो गए हैं। उनके व्यक्तित्व से भी, वारकरी परंपरा से भी, और अपने समय के जनजीवन से भी। जनजीवन से इसलिए कि उनकी वाणी सच्चे अर्थों में लोकवाणी है जो लोक में प्रचलित मान्यताओं, व्यवहारों, उपमाओं आदि का आधार लेकर लोक में ही प्रचलित शब्दों, मुहावरों, कहावतों में प्रस्फुटित हुई है। तुकाराम का व्यक्तित्व, जिसमें संतपन, कवित्व और धर्म की अभिन्नता स्थापित होती है, संत परंपरा, विशेषकर वारकरी परंपरा का चरम निचोड़ कहा जा सकता है। अपने एक अभंग में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे अपने तुका होने के लिए निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, चांगदेव, नामदेव, नरहरि सुनार, रोहिदास और कबीर आदि के ऋणी हैं।

कह सकते हैं कि संत तुकाराम होने की शक्ति उन जीवन परिस्थितियों में उतनी निहित नहीं है, जितनी उस परंपरा में, जिसे उन्होंने पहले आत्मसात किया और फिर संवर्द्धन किया। यह तो माना जा सकता है कि व्यापार में घाटा और अकाल में स्त्री और पुत्र की मृत्यु जैसी विपत्तियों ने तुकाराम को आत्मोन्मुख बनाया। लेकिन पहले से मौजूद सशक्त संत-परंपरा से जुड़ कर ही उनकी सर्जक प्रतिभा सक्रिय हुई। सपने में नामदेव द्वारा उन्हें कवित्व रचने की प्रेरणा देने का प्रसंग दरअसल संत-पंरपरा से उनके जुड़ाव को ही ध्वनित करता है। पहले से मौजूद संत-परंपरा की ऊर्वर भूमि पर ही तुकाराम की रचनात्मकता पल्लवित-पुष्पित हुई है। हालांकि उन्हें भी अन्य संतों की भांति आत्मसाक्षात्कार - मन को मनाने और अहंकार को मिटाने - के लिए निरंतर गहरा आत्मसंघर्ष करना पड़ा है, जिसका साक्ष्य उनके अनेक अभंगों में मिलता है। आत्मसाक्षात्कार करने के पीछे तुकाराम का केवल आत्म-मुक्ति का लक्ष्य नहीं है, वे सभी

की मुक्ति के लक्ष्य से परिचालित हैं। यानी उनका धर्म सभी की मुक्ति का साधन बनता है। भालचंद्र नेमाडे ने कहा है कि "तुकाराम ने धर्म को निजी मोक्ष के रूप में ही नहीं समूची मानव जाति की मुक्ति के रूप में देखा है।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि संत-परंपरा मुख्यतः शूद्र-परंपरा है। शूद्र यानी भारत का अधिसंख्य समाज, जिसे वर्ण और जाति के कटघरों में कैद करके धर्म और ज्ञान की पहुंच से बाहर रखा गया था। संतों द्वारा बताया गया धर्म उसी 'धर्म'-बहिष्कृत समाज का धर्म है। संस्थानीकृत धर्म के बरक्स वह जनसाधारण का धर्म है। तुकाराम ने कहा है कि संत वही है जो पीड़ित-दुखित को अपना कहता है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि परमात्मा ऐसे ही संतों में रहता है। संतों की वाणी जनसाधारण को सीधे खींचती है और जनमानस में घुल-मिल जाती है। यह संतो के जनसाधारण के साथ और जनसाधारण के संतों के साथ पूर्ण तादात्मय का प्रमाण है। जनसाधरण के साथ तादात्मय के सवाल पर आज के जनवादी लेखकों की संतों के साथ तुलना करें तो कई रोचक उद्घाटन हो सकते हैं। बहरहाल, दोनों के बीच यह तादात्मय उस परेशानी का सबब भी बनता है, जो अक्सर उनकी मूल वाणी की खोज करने वाले विद्वानों और उनके नाम पर मठ चलाने वाले मठाधीशों को होती है। अन्य संतों की तरह तुकाराम के अभंगों की संख्या और मूल पाठ आज तक विवादास्पद हैं। लेकिन यह निर्विवाद है कि उन्हें जनसामान्य का अथाह और अटूट प्रेम मिला है। ऐसा तभी संभव है जब तुकाराम को भी जनसाधारण से वैसा ही प्रेम रहा हो। उनकी कई कटूक्तियों के बावजूद। जेआर अजगोंकर का कहना है कि तुकाराम की कटूक्तियां लोगों के प्रति उनके प्रेम की सच्चाई को ही जाहिर करती हैं। तुकाराम ने भी कहा है कि तुम्हारे हित के लिए मैं तीखे वचन बोलता हूं, इसलिए कि कड़वे काढ़े से ही ज्वर उतरता है।

यह सर्वमान्य और सही भी है कि संत परंपरा में धर्म का मूल तत्व प्रेम है। अन्य संतों की भांति तुकाराम का भी मानना है कि बिना प्रेम के न ब्रह्मज्ञान संभव है, न ब्रह्म की प्राप्ति। तुकाराम प्रेम को धर्म का मूल तत्व मानते हैं। उन्होंने प्रेम के लिए भाव शब्द का भी प्रयोग किया है और कहा है: 'वह ज्ञान, वह चतुराई जल जाए जो विट्ठल के चरणों में प्रेमभाव पैदा नहीं करती'। वे योगाभ्यास अथवा तप-साधना के जरिए नहीं, अनन्य प्रेम के बल पर परमात्मा को पाना चाहते हैं। प्रेम के गुण को अर्जित करना और सबके साथ व्यवहार में लाना - यही भक्ति अथवा धर्म की साधना है। बल्कि तुकाराम का कहना है कि परमात्मा की पूजा का रहस्य यही है कि प्राणी-मात्र के प्रति किंचित भी द्वेष न रखा जाए। सर्वव्यापी परमात्मा के प्रति प्रेम की भावना ही भक्ति है। तुकाराम क्योंकि सभी में परमात्मा का वास मानते हैं, इसलिए उनके यहां प्राणी-मात्र के प्रति प्रेमभाव रखना भक्ति है। जाहिर है, भारतीय समाज में विद्यमान वर्ण और जाति की जकड़बंदी के विरुद्ध यह जन-मुक्ति का धर्म है। हालांकि तुकाराम ने वारकरी अथवा भागवत संप्रदाय के कतिपय व्यवहारगत नियमों का कथन और उनकी पालना, विशेष रूप से विट्ठल का दर्शन करने के लिए साल में दो बार पंढरपुर की यात्रा करने, की बात की है लेकिन उनका मुख्य जोर प्रेम पर है। यह प्रेम की ही ताकत है कि तुकाराम ब्रह्मज्ञानियों को झुका देने, सारे संसार को ब्रह्मरूप कर देने, वेदों का सही अर्थ जानने और राहें रोशन कर झूठ-सच का फैसला करने का आत्मविश्वास व्यक्त करते हैं।

हालांकि स्त्री-समाज को अन्य संतों की तरह तुकाराम ने भी प्रेम की पहुंच से प्रायः बाहर रखा है, लेकिन भालचंद्र नेमाडे का मानना है कि तुकाराम ने शूद्र के साथ स्त्री को भी सम्मान दिया है। बहिणाबाई

(1628-17 00) तुकाराम की समकालीन थीं। वे ब्राहमण थीं, फिर भी उन्होंने तुकाराम को गुरु माना। बहिणाबाई ने तुकाराम के जीवन पर 35 अभंगों की रचना करके उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है।

वारकरी संतों की लोकप्रियता का एक कारण यह है कि उन्होंने अद्वैतवाद और निर्गुण ब्रह्म की मान्यता के साथ विष्णु के कृष्णावतार विट्ठल की मूर्ति की पूजा का विधान किया है। पंढरपुर की यात्रा और संकीर्तन का आयोजन जनसाधारण को संपृक्त और अभिभूत करते हैं। तुकाराम ने इस दिशा में अन्य संतों के मुकाबले ज्यादा उद्यम किया। इसमें तुकाराम की भूमिका सबसे ज्यादा है कि आज भी महाराष्ट्र के ग्रामीण आषाढ़ और कार्तिक महीनों की शुक्ल पक्ष की एकादशी को पंढरपुर की यात्रा करते हैं। दिलीप चित्रे ने पंढरपुर की तीर्थयात्रा को 'धरती के धर्म' से जोड़ा है तो भालचंद्र नेमाडे ने इस धार्मिक पंरपरा को भारतीय ग्रामीण जीवन के लिए प्रबल शक्ति का स्रोत कहा है। यह तुकाराम के धर्म के जनसाधारणत्व की ही पुष्टि है।

संतों द्वारा प्रतिपादित धर्म का जनसाधारणत्व इससे भी स्पष्ट है कि उन्होंने भोगवाद और संन्यासवाद की अतियों को नकार कर श्रमपूर्वक सादगी का जीवन जीते हुए परमात्मा के स्मरण और प्राप्ति का रास्ता दिखाया है। तुकाराम ने मानवीय संसार और आध्यात्मिक संसार को अलग-अलग न मान कर अन्योन्याश्रित बताया है और इस तरह जीवन से भागने की निरर्थकता सिद्ध की है। उनका कहना है संसार को बाहर से नहीं, भीतर से त्यागो। श्रम, सादगी, संयम और वैराग्य का जीवन जीते हुए प्रेम की भावना से परमात्मा की भक्ति करने के उनके आह्वान में भोगवादी जीवन-शैली, जो आज बाजारवादी उपभोक्तावाद के रूप में उपस्थित है, का निषेध और नकार निहित है। तुकाराम ने जीवन में करुणा, अहिंसा, दया, शांति, क्षमा, परोपकार आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। जाहिर है, उनके इस मानवीय उद्यम में धार्मिक कट्टरतावाद, जो आज संप्रदायवाद (कम्युनलिज्म) के रूप में मौजूद है, की काट निहित है।

जुलाई 2020